ISSN : 2583-2948

समकालीन हिन्दी दलित कविताओं में स्त्री विमर्श

डॉ. पारुल सिंह
आचार्या
श्री कृष्ण प्रणामी आर्ट्स
कॉलेज,दाहोद
३८९१६० (गुजरात)
मो नं. 9428673109

स्त्री विषयक आधुनिक चिंतन ही आजकल स्त्री विमर्श के रुप में जाना जाता है। वस्तुतः स्त्री संबंधी न्यायिक, वस्तुनिष्ठ, सामाजिक और वैचारिक सोच ही स्त्री-विमर्श की मूल अवधारणा है। भारतीय चिंतन परंपरा में स्त्री विषयक सोच-विचार की रस्म बहुत पुरानी है। वेद, उपनिषद और पौराणिक तथा धार्मिक ग्रंथों में स्त्री विषयक विचार समय पर अभिव्यक्त किए हुए मिलते हैं। स्त्री के संबंध में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' से लेकर नारी माया है, नरक की खान है तक का विचार वैभिन्य हमारे यहाँ उपलब्ध है । स्त्री समाज की पहली कड़ी है। हिन्दी दलित कविता में स्त्री की अनेक रुपों में अभिव्यक्ति हुई है। डॉ. अम्बेडकर ने 1942 में नागपुर में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में कहा भी था कि-

''किसी भी समाज की प्रगति का सही अन्दाजा स्त्रियों में हुई प्रगति से ही लगाया जा सकता है। आप घरों से निकलकर यहाँ तक आई निश्चय ही आप प्रगति के पथ पर हैं। आप अपने पतियों के सामाजिक कार्यों में सहयोग करें। पति की दासी नहीं मित्र बनें, बच्चे कम पैदा करें और उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने पर ही, उनकी राय के अनुकूल शादियाँ करें। बेटी-बेटा दोनों को उच्च शिक्षा दें पति यदि शराब पीकर घर में घुसे तो उनके लिए घरों के दरवाजा बन्द कर दें। अधिक नहीं तो इनकी थोड़ी-सी बातों पर अमल करें तो निश्चय ही आपकी प्रगति होगी।''1

स्त्रियों पर सदियों से पुरुष समाज द्वारा नाना प्रकार के सामाजिक बंधनों द्वारा उसका शोषण किया जाता रहा है। इस पारिवारिक अत्याचार तथा दमन के प्रति सचेत स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया है। स्त्रियों को उनके अपने अस्तित्व बोध ने ही विमर्श की प्रेरणा दी है। उन्हें अपने आत्मसमर्पण और पितृसतात्मक व्यवस्था से बाहर लाने पूरा श्रेय स्त्री विमर्श को ही जाता है। ''नारी विमर्श नारी मुक्ति से सम्बद्ध एक विचारधारा है। यह एक ऐसा विमर्श है जो नारी जीवन छुए-अनछुए पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है।''2

दलित परिवार में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का स्तर शिक्षा के क्षेत्र में पीछे है। गरीबी, पारिवारिक, सामाजिक, वातावरण, आदि समस्याओं के कारण बच्चियाँ पढ़ नहीं पाती वह बचपन में ही घर की जवाबदारियों से घिरकर रह जाती हैं। अपने छोटे भाई-बहन को सँभालने से लेकर परिवार को सहयोग देने के लिए वह स्वयं को भूल ही जाती है। स्कूल जाने का समय भी नहीं निकल पाता-

''वह जो लकड़ी काटती

थापती उपलें,

पकाती है भट्टे में ईंट

बनाती है बीड़ी

बीनती है कोयला

शाम के खाने के लिए

अब कहाँ बचा है उसके पास

स्कूल जाने का समय....।''3 (चंद्रभान-'इरादे तभी करवट लेते हैं')

दलित कन्या जब युवा होती है तब वह अपने परिवार को आर्थिक सहयोग देने के लिए मजदूरी भी करती है। जहाँ तथाकथित काम पिपासु समाज उसे निगल लेने की चाह में रहता है। वह समाज और दबंग लोगों के भय से अमानवीय मानसिक प्रताड़ना को अपने तक ही रखती है। अपने परिवार की सलामती के लिए वह अपमान भी मौन रहकर सहती है। जब वह विवाहित होती है तब भी यह काम पिपासु निगाहें उसका पीछा नहीं छोड़ती। बस उस दिन के इंतजार में रहती हैं कि कब वह लाचारी की स्थिति में आए। निर्धन दलिता अपने बीमार बच्चे के इलाज के लिए जब बेबस होकर ठेकेदार से मदद माँगती है तब इसके बदले में उसे अपना आत्मसम्मान दाव पर लगाना पड़ता है-

बच्चा सच में बीमार!

तप रहा था उसका बदन

चिलचिलाती धूप-सा

माथे पर उभर रही थी

पसीने की बुंदें

झुमरी के पास न था पैसा

थोड़ी देर में आया था

इंजीनियर बाबू

डॉक्टर की फीस के

एवं दवा दारु के

पैसे दिखा रहा था

बदले में झुमरी को

पास की सूनी झूपड़ी में

उसी वक्त बुला रहा था

चिलचिलाती धूप

तब भी.....

पीछा कर रही थी।''4 (रेश एस. टेंमेकर-'झुमरी')

परिवार की सलामती की कामना में दलित नारी कई बार काम पिपासु की शोषण की शिकार हो जाती है। वह अपनी व्यथा को जब बताती है, ये तब समाज उसे शंका के घेरे में रखता है, उसे ही इसका दोषी मानता है-

‘‘शब्द चेतना है

शब्द अन्याय के विरुद्ध

भंवरी की न्यायिक वेदना।‘‘5 (कुसुम वियोगी-‘शब्द‘)

कामकाज़ी मजदूरिन का शारीरिक शोषण उसके अंतर्मन को पूर्णतः चूर-चूर कर देता है। एक ओर उसका परिवार उससे आर्थिक सहयोग की अपेक्षा रखता है दूसरी ओर ठेकेदार वर्ग ललचायी आँखों से उसे निगलने की ताक में रहता है। दलितों का सपूर्ण जीवन संकेटों से घीरा रहता है। दलित स्त्री का पति भी उसकी समस्याओं को जानते हुए कई बार अन देखा करता है। क्योंकि वह ठेकेदारों का विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाता। उसकी पत्नी से उसकी आजीविका जुड़ी है वह काम न भी करे तो स्त्री तो बच्चों की भूख मिटाने के लिए श्रम करेगी है। गाँव में जब कोई दलित कुँए स्त्री में कूदकर मृत्यु को प्राप्त होती है तब-

‘‘पति बेचारा भटक गया व

लूट गयीं आजीविका उसकी

घर में हाँड़ी तक न बची थी

हाय ! बेचारे के जीवन की

आज़ादी कहीं और चल बसी

रोजी-टूटी, रोजी खूटी

और एक औरत की इज्जत

व कोई पेशा, न मजदूरी

भूखा बच्चा, भूखी जननि

रोजी खोजती रोती-रोती

भटक रही थी, जो हाथ आ गयीं

एक तिलकधारी

सेठ-पुत्र के हाथ लग गयीं

और मर गयीं

बच्चा लिए

दो बच्चे की माँ मर गयीं

कुँए में कूदकर

भूखे पेट तड़प-तड़पकर

हर दिन हृदय में दहशत भर

राह पर गिरते-चकराते

जीवन-मार्ग गयीं चूक.....।

अरे, मर गयी मजदूरन एक।''6 (हिम्मत खाटसूरिया-'गाय मर गयीं, बाई मर गयी')

कई बार दलित समाज में दलित स्त्री के त्याग, बलिदान, समर्पण एवं उसकी पीड़ा को समझने वाला कोई नहीं होता। वह दो-तरफा शोषण को सहती जाती है। दलित एवं सवर्ण समाज उसका शोषण करता है। उसकी अकाल मृत्यु पर केवल शोक प्रकट किया जाता है। मृत्यु का कारण सभी जानते हैं किन्तु कहीं उसकी चर्चा नहीं की जाती। सब कुछ जानकर भी चुप्पी साधे समाज पर कवि यहाँ व्यंग्य करते है-

''अभावों में फलीफूली

और पीड़ाओं ने पाली है दलिता,

चमकती सदियों से तू

अपना ही रक्त जलाकर दलिता !

भले होती न हो चैक में

तेरी पूरी चर्चा या बातें,

न उनकी चुप्पी तुझे

रोक पाएँगी, दलिता।''7 (किशन सोसा-'दलिता के नाम')

इस नारी की व्यथा पर खुद नारी ही कोई विरोध नहीं करती। समाज की चक्की में वह अपने स्त्री स्वयं आप को सुरक्षित बनाकर रखना चाहती है। यहीं से दलित स्त्री और सवर्ण स्त्री की अलग-अलग रुपों में पहचान होने लगती है। स्त्री विमर्श का यह कट्टर प्रश्न है। क्योंकि सवर्ण स्त्री को वह सब कुछ मिलता है, जिसकी उसको आवश्यकता होती है। उसे घर में सम्मान, आराम की जिंदगी, शिक्षा आदि मिलती है, किन्तु ये सब उस गरीब, असहाय दलित स्त्री को प्राप्त नहीं होता। जो लोग यह कहते हैं कि स्त्री केवल स्त्री होती है उसका कोई, धर्म जात, वर्ग नहीं होता, वह गलत है-

''मेरी नारी बिरादरी कहती है

औरत, औरत होती है

उसकी न कोई जात

न कोई धर्म होता है।

औरत-औरत होने में

जुदां-जुदां फर्क नहीं क्या ?

एक भंगी है तो दूसरी ब्राह्मणी।

एक डोम है तो दूसरी क्षत्राणी

औरत-औरत में अंतर है

एक पेशे से पायलट है, दूसरी

शिक्षा से वंचित, शनिचरी

एक ठकुरानी है तो दूसरी महतरी

कहने को दोनों ही औरत हैं

एक ताज है एक धूल ।'8 (रजनी तिलक-'एक ताज है एक धूल')

सवर्ण युवक दलित युवती से जब प्रभावित होते हैं उनके साथ मित्रता कर विवाह का सपना दिखाते हैं किन्तु जैसे ही उनके समक्ष जाति का सत्य उजागर होता है उनका व्यवहार ही बदल-सा जाता है। कवियों ने सवर्ण समाज की युवा पीढ़ी के दोहरे चरित्र पर कटाक्ष किया है-

''तुम !

तुम वही हो

जिन्होंने गोरी-गोरी काया देखकर

डोर डाले थे एक दिन,

और आज !

मेरे लिविंग सर्टि में जाति पढ़कर

आँखें क्यों फिरा ली

हीनता का एहसास करते हो तुम

सच में आज ?''9 (चंद्राबहन श्रीमाली-'डोरे')

समय परिवर्तन शील है। अब दलित स्त्री शोषण और यातनाओं में जीवन नहीं जीना चाहती। वह शिक्षा प्राप्त करके शिक्षा को ही अपना हथियार बनाना चाहती है। उसकी आदर्श है पहली दलित क्रांतिकारी स्त्री सावित्री बाई फुले। सावित्री बाई ने अपना संपूर्ण जीवन दलित स्त्री के उद्धार में समर्पित कर दिया-

''सावित्री बाई फुले

तुम्हारा जीवन था एक कसौटी

तुम्ही पहली शिक्षिका

बनी स्त्री मुक्ति की लौ

अभाव और कष्टों में रहकर

संचेतना के बीच अंकुरित किया

तुम थी पहली पद दलित स्त्री

जिसने ऊँची आवाज में

ब्राह्मणी समाज को दुत्कारा था

शूद्र, अतिशूद्रों एवं स्त्री जाति के

मान स्वाभिमान को जगाया था।''10 (रजनी तिलक-'स्त्री मुक्ति की मशाल हो)

आत्मनिर्भर होना किसी व्यक्ति के जीवन की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। किसी अबला का शोषण करना सरल है किन्तु सबला नारी आज अपनी स्थिति में स्वयं परिवर्तन ला रही है। वह घर के अंदर और या बाहर अपने मजबूत ईरादों के साथ जीना चाहती है। वह स्त्री अब अपने ऊपर होने वाले शोषण को छुपाना नहीं चाहती बल्कि उस शोषणकारी को सबक सिखाने में विश्वास रखती है और न ही आँसू बहाना चाहती है बल्कि उन आँसू को अंगार में बदलने की आकांक्षा रखती है। दलित नारी का यही विचार आज दलित नारी विमर्श को गति प्रदान करता है-

''विचार में किसी विषय पर गंभीरता से सोचना होता है और विमर्श में किसी विषय पर तर्कपूर्ण सोचना। विचार का अगला कदम विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में ही ठोस दस्तक के रुप में आया है। वह स्त्री के अतीत और वर्तमान को एक स्वतंत्र 'अस्मिता' देता है जब तक शोषण, संघर्ष और मुक्ति का सपना साथ में होगा तब तक न स्त्री-विमर्श खत्म होगा न दलित-विमर्श और न ही माक्र्सवादी विमर्श।''11

आज हिन्दी साहित्य में दलित स्त्री विमर्श अन्य विमर्श की तरह एक अहम हिस्सा है, जिसकी सवर्ण साहित्य का स्त्री विमर्श और दलित पुरुषों का दलित विमर्श भी एक तरह से अनदेखी कर रहा था। यही कारण है कि दलितों में दलित यानी दलित स्त्री भी समाज और साहित्य में अपना स्थान निर्धारित करने के लिए आंदोलन कर रही हैं। दलित महिलाएँ अपनी लेखनी के माध्यम से अपने मुद्दों को साहित्य के केन्द्र में ला रही हैं।

शिक्षा ही हर अंधकार को दूरकर ज्ञान रुपी प्रकाश पुंज से असहायों को सक्षम बनाने का सामथ्र्य रखती है। आज वह दलित स्त्री शोषण को सहना नहीं बल्कि अन्याय के विरुद्ध लड़ना सीख गई है। स्त्री विमर्श प्रतिबद्ध है।

समकालीन हिन्दी कविताओं में दलित स्त्री के जीवन में घटित यथार्थ को बड़ी साफ गोई से बयाँ किया जा रहा है। सच्चाई यही है कि यदि दलित स्त्री का दर्द अनुभव करना है या जानना है तो आपको उस जिन्दगी को स्वयं महसूस करना पड़ेगा। यदि ऐसा नहीं करते तो वे हकीकत न होकर केवल लोगों के मनोरंजन का साधन बनकर रह जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य 2003-जयप्रकाश कर्दम-पृ. सं. 77

2. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध विमर्श-सं-श्रीराम शर्मा पृ. सं. 90

3. दलित साहित्य 2003-जयप्रकाश कर्दम-पृ. सं. 77

4. दलित साहित्य 2007-2008-जयप्रकाश कर्दम-पृ. सं. 121

5. दलित साहित्य 2003-'शब्द'-कुसुम वियोगी-डॉ. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 78

6. ब्रेइनवॉश-सं.-हरीश मंगलम्-मधुकांत कल्पित, अरविंद वेगड़ा-पृ. सं. 28-29

7. बही पृ. सं. 36-37

8. दलित साहित्य 2003-जयप्रकाश कर्दम-पृ. सं. 78

9. ब्रेइनवॉश-सं-हरीश मंगलम्-मधुकांत कल्पित, अरविंद वेगड़ा-पृ. सं. 59

10. दलित साहित्य 2003-जयप्रकाश कर्दम-पृ. सं. 78-79

11. बयान- अगस्त 2008-सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 7